1909 का सुधार अधिनियम (मार्ले-मण्टो सुधार)

भारत के संवैधानिक विकास का इतिहास ब्रिटिश शासन के इतिहास से जुड़ा हुआ है। भारत के संवैधानिक विकास के इतिहास को दो भागों में बाँटा जा सकता है-
1) ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के अन्तर्गत और
2) ब्रिटेन की सरकार के शासन के अन्तर्गत। 1600 ई० में महारानी एलीजाबेथ के घोषणा पत्र से अंग्रेज ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में व्यापार करने की अनुमति प्राप्त की। अंग्रेजों के अतिरिक्त अन्य युरोपीय शक्तियाँ पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी आदि भी व्यापार करने भारत आई। भारत की दुर्बल राजनैतिक स्थिति विदेशी शक्तियों ने लाभ उठाना आरंभ कर दिया। इनमें डच व पुर्तगाली तो लगभग नष्ट हो गये किन्तु भारत में व्यापारिक (अथवा राजनीतिक) प्रमुख की स्थापना हेतु अंग्रेजों एवं फ्रांसीसीयों के मध्य तीन कर्नाटक युद्ध लड़े गये। कर्नाटक युद्धों में फ्रांसीसियों की असफलता ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को सर्वोच्च शक्ति के रूप में स्थापित कर दिया। क्लिव कम्पनी ने भारत में राज्य विस्तार आरंभ किया प्लासी और बक्सर के युद्ध में कम्पनी की विजय ने उसे बंगाल, बिहार और उड़ीसा के विशाल प्रदेशों का स्वामी बना दिया। 1764 ई० में क्लाइव ने "दोहरा शासन" की प्रणाली प्रारम्भ की। किन्तु इससे न केवल इन सूबों की बल्कि कम्पनी की आर्थिक स्थिति नाजुक हो गई और उसे ब्रिटिश सरकार से ऋण कर्ज मांगना पड़ा। कम्पनी को कर्ज तो मिल गया किन्तु सरकार अब कम्पनी शासन में सुधार हेतु गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगी। 1773 ई० में "रेगुलेटिंग एक्ट" द्वारा गवर्नर जनरल का पद एवं उसकी संसद की स्थापना की गई। बाद में कई सुधार अधिनियम

1784 का पिट्स इण्डिया एक्ट, 1793 का चार्टर एक्ट, 1813 का चार्टर एक्ट 1833 का चार्टर एक्ट, 1853 का चार्टर एक्ट आदि पारित किये गये। 1856 ई० तक अंग्रेज भारत विजय प्रायः पूर्ण कर चुके थे। अंग्रेजी राज्य विस्तार में क्लाइव, वॉरेन हेस्टिंग्स लार्ड कार्नवालिस, वेलेजली, हेस्टिंग्स, डलहौजी आदि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नाम उल्लेखनीय हैं भारत का यह अंग्रेजी राज्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने स्थापित किया था किन्तु 1857 विद्रोह के बाद यह महसूस किया गया कि अब कम्पनी के हाथों में राज्य सुरक्षित नहीं है। 1858 ई० के भारत सरकार अधिनियम द्वारा यह राज्य अब सीधे ब्रिटिश सरकार को दे दिया गया और ब्रिटेन की पार्लियामेन्ट और कैबिनेट भारत के शासन के लिये उत्तरदायी हो गई। यह सरकार अथवा होम गवर्नमेन्ट की स्थापना की गई। बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स और बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल को समाप्त करके सारे अधिकार भारत संचिव या सैक्रेटरी ऑफ स्टेट को सौंप दिये गये। भारत सचिव की सहायता के लिये 15 सदस्यों वाली एक परिषद् "इण्डिया कौंसिल" का गठन किया गया। गवर्नर जनरल को भारत सचिव के अधिन रखा गया और भारत मे ब्रिटिश सम्राट का प्रतिनिधि के रूप मे कार्य करने लगा। इस कारण उसे "वायसराय" भी कहा गया है। 1861 के अधिनियम द्वारा गवर्नर जनरल की शक्तियों मे वृद्धि की गई। और प्रान्तीय गवर्नरों को स्थानीय कि विषयों सम्बंधी कानून बनाने के अधिकार प्रदान किये गये।

हालांकि इन सुधार अधिनियमो द्वारा भारत मे एक सुव्यवस्थित शासन

PAGE :
DATE : / /

व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया गया था। किन्तु भारतीय जनता इनसे असन्तुष्ट थी। ब्रिटिश सरकार ने जनसाधारण की स्थिति को सुधारने के लिये कुछ नहीं किया। निरन्तर आर्थिक शोषण से भारत के अधिकांश प्रदेश अकाल और भुखमरी से ग्रस्त थे। लार्ड लिटन के प्रतिक्रियावादी शासन ने व्यापक असन्तोष को जन्म दिया। लार्ड लिटन ने अपने शासनकाल में कई ऐसे कार्य किये जिनसे भारतीय राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन मिला। रिपन के काल में इल्बर्ट बिल विवाद ने अंग्रेज के प्रजातीय विभेद को प्रकट कर दिया। इस विवाद ने अखिल भारतीय लक्षण के राजनीतिक संगठन की आवश्यकता स्पष्ट कर दी। आवश्यकता का संमाधान 1885 ई. में कांग्रेस की स्थापना के रूप प्रकट हुआ। कांग्रेस के प्रारंभिक बीस वर्षों का काल उदार अथवा नरम राष्ट्रीयता का काल था। दादाभाई नौरोजी गोपाल कृष्ण गोखले आदि का उद्देश्य था कि भारत में लोकमत को सक्रिय किया जाय ताकि जनता की कठिनाइयों की ओर ध्यान दिलाया जा सके और सुधारों के लिये संवैधानिक रूप से जोर डाला जाये।

आरंभ में अंग्रेज के प्रति अंग्रेज कांग्रेस अधिकारियों व्यवहार सद्भावनापूर्ण तथा मित्रतापूर्ण था परन्तु 1888 तक यह पूर्णतया परिवर्तित हो गया। लार्ड डफरिन ने तो कांग्रेस को यह एक सूक्ष्म अल्पसंख्या का प्रतिनिधित्व करती है तथापि उसने आन्दोलन के महत्व को समझते हुए परिषदों को उदार बनाने के सुझाव इंग्लैंड भेजे। 1892 ई. में ये सुझाव भारतीय परिषद अधिनियम के रूप में पारित हुए। 1892 के सुधार अधिनियम को वस्तुतः उत्तरदायी शासन की स्थापना" करने वाला माना गया है।

Scanned with CamScanner

फिर भी यह भारतीयों की भावनाओं को सन्तुष्ट नहीं कर सका। लार्ड कर्जन की नीतियों से देश में व्यापक असन्तोष उत्पन्न हो गया और कांग्रेस में क्रान्तिकारी विचारधारा जोर पकड़ने लगी। 1905 में हुए बंग-भंग के विरुद्ध आन्दोलन ने क्रान्तिकारी रूप धारण कर लिया। इससे सरकार ने अपनी शक्ति से कुचलने का प्रयास किया। फलस्वरूप देश में आतंकवादी आन्दोलन का विकास हुआ। राष्ट्रीय कांग्रेस में फूट पड़ गई और सरकार उदारवादियों को सन्तुष्ट करने का प्रयास करने लगी। साम्प्रदायिक आधार पर विभाजन की बात सरकार विचारने लगी थी। गवर्नर जनरल की लेजिस्लेटिव मुस्लिम प्रतिनिधित्व देने के लिये बुलाया गया। इन सभी बातों को आधार प्रदान करने के लिये 1909 का सुधार अधिनियम पारित किया गया।

1909 का सुधार अधिनियम मार्ले मिण्टो सुधार

1892 के भारतीय परिषद् अधिनियम के बाद भारतीयों को जो आगामी सुधार किये गये उन सुधारों का नाम मार्ले-मिण्टो सुधार या लार्ड मिण्टो इस समय भारत के गवर्नर जनरल थे और लार्ड मार्ले भारत मन्त्री थे। ये दोनों भारतीय शासन के प्रति उत्तरदायी थे और इस कारण इन नवीन सुधारों का नाम मार्ले-मिंटो सुधार रखा गया। इन्हें भारतीय परिषद् अधिनियम भी कहा जाता है। 1909 के सुधारों की आवश्यकता को महसूस की गई। उसके निम्नलिखित कारण थे।

PAGE:
DATE: / /

1. 1892 के अपर्याप्त सुधार :— 1885 में कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी और उसने सरकार के समक्ष अपनी कुछ माँगे रखी थी। उन मांगों का सीमित मात्रा में उत्तर देने के लिये 1892 के सुधार किये गये थे। यद्यपि इस एक्ट में व्यवस्थापिका (लेजिस्लेटिव) के सदस्यों की संख्या और अधिकारों में वृद्धि की गई थी किन्तु ~~अंग्रेस~~ कांग्रेस की दृष्टि से ये सुधार पर्याप्त नहीं थे। वह और अधिक सुधार चाहती थी। 1902 में उदारवादी नेता गोपालकृष्ण गोखले स्वयं भारत मन्त्री लार्ड मार्ले से मिले थे और उन्होंने भारत में नवीन सुधारों की तत्काल आवश्यकता पर बल दिया था।

~~उदार~~ उधर कांग्रेस की उग्रवादी शाखा ने 1892 के अपर्याप्त सुधारों की कटु आलोचना की। लोकमान्य तिलक ने स्वराज्य का नारा दिया और उदारवादियों की राजनैतिक भिक्षावृत्ति की नीति की आलोचना करते हुए कहा "राजनैतिक अधिकारों के लिए लड़ना पड़ेगा। उदारवादी ये समझते थे कि ये प्रेरणा से प्राप्त किया जा सकते हैं ये समझते हैं कि ये दबाव से प्राप्त किये जा सकते हैं। अतः जब सरकार पर दबाव पड़ने लगा तो उसे सुधार करने पड़े।

2. उग्रवादियों का जनता पर प्रभाव :— 1906 ई० तक कांग्रेस में उग्रवादियों की संख्या काफी बढ़ गई थी। वे सरकार की नीतियों तथा कार्यों की स्पष्ट आलोचना करने लगे थे। प्रमुख उग्रवादी नेताओं ने तिलक ने अपने ~~सक्रिय~~ भाषणों व अखबार

Scanned with CamScanner

केसरी के माध्यम से भारतीयों को उनके गौरवमयी अतीत की याद दिलाई। लेकिन चन्द्र पाल ने बंगाल में बंगाल विभाजन पर अंग्रेजी शासन के उद्देश्यों से जनता को अवगत कराया। लाला लाजपतराय ने अपने ओजपूर्ण भाषणों द्वारा पंजाब को जागृत किया। सबने मिलकर एक महान आन्दोलन का स्वरूप धारण कर लिया। इनका उद्देश्य था जितना शीघ्र हो भारत से ब्रिटिश शासन समाप्त हो जाये। उनका ये भी मत था तिलक ने कहा "एक विदेशी अच्छी सरकार से कम अच्छी राष्ट्रीय सरकार अच्छे उपयोगी वह उत्तम है।" इस प्रकार का उग्रवादी आन्दोलन जब चला तो निश्चित रूप से शासक के मन में घबराहट उत्पन्न हुई कि ऐसा न हो इसलिए यदि इस आन्दोलन को शीघ्र रोका नहीं गया तो उनके साम्राज्य को खतरा उत्पन्न हो सकता है। अब सरकार ने सुधार देने पर विचार करने लगी।

3 क्रान्तिकारी आन्दोलन :-

भारतीयों की समस्याओं के प्रति अंग्रेजी सरकार की उदासीनता के कारण युवा राष्ट्रवादी आतंकवादियों में परिवर्तित हो गये। इन्होंने पुना में कमिश्नर रैण्ड और नासिक के कलेक्टर की हत्या कर दी। आतंकवादियों के बढ़ते से सरकार में भय व्याप्त हो चला था। अतः 1909 ई० में नए अधिनियम पारित कर सरकार से रोकना चाहते थी।

4 लार्ड कर्जन का आगमन काल ⇒

लार्ड कर्जन की निरंकुशतावादी नीतियों ने भारत की स्थिति को और भी बिगाड़ दिया। इसने बुद्धिजीवि वर्ग को सक्रिय सरकार विरोधी बना दिया। कर्जन ने कलकत्ता निगम को पूर्णरूपेण सरकारी प्रभाव के अधीन बना दिया और इसमें यूरोपियनों को बहुमत दे दिया। पाँच वर्ष पश्चात् ऐसी ही नीति भारतीय विश्वविद्यालयों में भी लागू की गई जिससे उनकी प्रभुसत्ता समाप्त हो गई। उसी वर्ष राजकीय रहस्य अधिनियम के अनुसार विद्रोह की परिभाषा का अधिक विस्तृत कर दिया गया। परन्तु सर्वाधिक घृणास्पद कार्य था 1905 ई० का बंगाल विभाजन बंगालियों ने इसे अपने प्रति षड्यंत्र, मानहानि और धोखे की संज्ञा दी। लार्ड कर्जन के कार्य ने भारतीयों में तीव्र असन्तोष में जन्म दिया और उग्र आन्दोलन आरंभ हो गई। अतः 1909 के अधिनियम के द्वारा सरकार भारतीयों के बढ़ते आक्रोश को ठण्डा करना चाहती थी।

5. वैदेशिक घटनाओं का प्रभाव :—

इसी समय विश्व में अनेक देशों में ऐसी घटनाएं हुई जिन्होंने भारतीय आन्दोलनकारियों का उत्साह वर्धन किया। एबीसीनिया द्वारा इटली को परास्त करना तथा रूस पर जापान की विजय कुछ ऐसी ही घटनाएँ थी। जापान की विजय ने यह स्पष्ट कर दिया कि राष्ट्रीय भावना से एक शक्तिशाली व विशाल देश को पराजित किया जा सकता है इस विजय ने पश्चिम के आधिपत्य को चुनौति दी इससे देश का राजनैतिक वेग

PAGE:
DATE: / /

क्षेत्र उत्साह से भर गया।

सुधारों का सरकारी पक्ष:-

उपर्युक्त सभी कारण सामान्य कारणों में रख जा सकते हैं किन्तु इन सुधारों का एक सरकारी पक्ष भी था।

[A] कांग्रेस में प्रतिसंतुलन:- 1907 में हुए सूरत में कांग्रेस विभाजन का भी सरकार लाभ उठाना चाहती थी। कांग्रेस में फूट पड़ गई थी। खोखले कहना था कि स्वराज्य की आशा करना चन्द्रमा की प्राप्ति के लिए चिल्लाने के समान है। उधर तिलक स्वराज्य के प्रबल पक्षपाती थे। ब्रिटिश सरकार सुधार द्वारा उदारवादियों को संतुष्ट करना चाहती थी ताकि सहायता से उग्रवादियों और आतंकवादियों की शक्ति का दमन किया जा सके। R. N. Agrawal के शब्दों में "The British govt. gave to reforms of 1909 to instill balance the extremists and moderates."

[B] बढ़ती हुई राष्ट्रीयता पर कुठाराघात:- भारत की तात्कालीन परिस्थिति में राष्ट्रीय एकता काफी आगे बढ़ चुकी थी और इस बढ़ती हुई राष्ट्रीयता पर अंकुश लगाने की दृष्टि से सरकार ने अपने-2 सुधार प्रस्तुत किये। 1909 के सुधार से पूर्व भारत सरकार ने तत्कालीन गृहमन्त्री सर हेरॉल्ड स्टुअर्ट ने एक सुधार योजना रची थी

Scanned with CamScanner

जिसमे यह व्यवस्था थी कि शिक्षित भारतीयो के प्रभाव के विरुद्ध एक ऐसी प्रतिनिधि का निर्माण किया जाये जो वर्ग तथा सम्प्रदायो का प्रतिनिधित्व करती हो।

28 मई 1906 को लार्ड मिण्टो ने लार्ड मोर्ले को एक पत्र लिखा था जिसमे यह कहा गया था कि " कांग्रेस के विरुद्ध एक एक प्रतिभार के बारे मे मैं काफी समय से विचार कर रहा हूँ मेरा विचार है कि एक राजप्रतिनिधि अथवा एक 14 वी कौंसिल बनाई जाये जिसमे न केवल देशी नरेश अपितु अन्य बडे लोग भी सम्मिलित हो ..... इससे हम इस समस्या का समाधान प्राप्त कर सकते है" यद्यपि लार्ड मिण्टो की धारणा के अनुसार एक राजप्रतिनिधि नही बनी किन्तु उससे भी अधिक शक्तिशाली प्रतिभार का निर्माण किया गया और वह थी मुस्लिम साम्प्रदायिकता। ब्रिटिश आन्दोलन से दूर होते जा रहे है। अतः "फूट डालो राज्य करो" की नीति के अन्तर्गत उनका उपयोग किया जा सकता है मुसलमानो को साम्प्रदायिक आधार पर प्रोत्साहन दिया जाने लगा और लार्ड मिण्टो ने उन्हे विश्वास दिलाया कि उन्हे केवल पृथक् मतदान का समर्थन ही नही अपितु उन्हे उनकी साम्राज्य के प्रति सेवाओ के लिये उनकी संख्या से अधिक प्रतिनिधित्व देने का का समर्थन करेगे। पासा फेक दिया गया और मुस्लिम साम्प्रदायिकता का दंगा हो गया।

Scanned with CamScanner

PAGE :
DATE : / /

इंग्लैण्ड में नई सरकार :- 1905 में इंग्लैण्ड में आम चुनाव हुए। इस चुनाव में उदार दल की सरकार बनी। मार्ले नये भारत मन्त्री बने और मिण्टो भारत के गवर्नर जनरल। नई सरकार यह चाहती थी कि कोई ऐसा कदम उठाया जाये जिससे भारत पर ब्रिटिश संसद का पूर्ण अधिपत्य भी बना रहे। और भारतीयों के मन में यह विश्वास जाग्रत हो कि लन्दन सरकार भारत की हितैषी है और भारतीय जनता का भला चाहती है।

इन सभी कारणों के परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने यह निश्चय किया कि भारत की शासन व्यवस्था में कुछ सुधार किये जायें। सुधार इस तरह से किये जाये कि भारतीयों को कोई वास्तविक शक्ति भी उपलब्ध न हो। और उनका उग्रवादी और भी धीमा पड़ जाये। 1909 का सुधार अधिनियम इसी नीति का परिणाम था। सर अस्कैटल की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गई जिसने 1906 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। सपरिषद् विचार करने के बाद लार्ड मिण्टो ने इन्हें भारत मन्त्री के पास भेजा। भारत में इन प्रस्तावों पर विचार करने के बाद, इनपर स्थानीय सरकारों की प्रतिक्रिया जानने फिर भारत भेजा। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में दो वर्ष लग गये। तब भारत मन्त्री ने इन प्रस्तावों को अन्तिम रूप दिया, जिसे ब्रिटिश कैबिनेट द्वारा स्वीकार कर लिया गया। फरवरी 1909 ई० में इन प्रस्तावों के आधार पर

PAGE :
DATE : / /

एक विधेयक तैयार कर ब्रिटिश संसद में प्रस्तुत किया गया और इस विधेयक ने भारतीय परिषद अधिनियम 1909 या मिन्टो मार्ले सुधार कानून की कार्यवाही की।

विशेषताएं :→

★ यद्यपि भारतीयों की मांगों के अनुरूप 1909 के सुधारों ने उनका उचित उत्तर नहीं दिया फिर भी 1909 के सुधार अपने पूर्ववर्ती सुधारों से आगे बढ़े हुए थे। 1909 के सुधार भारत में प्रतिनिधात्मक संस्थाओं के विकास की दिशा में एक निश्चित कदम था। इस सुधार कानून द्वारा किये गये।

केन्द्रीय व प्रान्तीय विधान परिषदों (या व्यवस्थापिका परिषदों एवं सभाओं Legislative council) का विस्तार → 1909 ई में सुधार कानून के द्वारा केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान परिषदों (Legislative council) के सदस्यों की संख्या में वृद्धि की गई। गवर्नर जनरल की व्यवस्थापिका सभा अथवा केन्द्रीय विधान परिषद की अतिरिक्त सदस्यों की संख्या सोलह से बढ़ाकर 60 कर दी गई। इस प्रकार केन्द्रीय विधायी परिषदों के कुल सदस्यों की संख्या 25 से बढ़ाकर 69 हो गई।

इसी प्रकार प्रान्तीय विधान परिषदों का भी विस्तार किया गया। मद्रास, बंगाल और बम्बई के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या 20 से 50 कर दी गई। संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) में सदस्यों की संख्या 20 से 50 कर दी गई, पंजाब, आसाम और बर्मा की विधान परिषदों की

PAGE :
DATE : / /

अधिकतम संख्या 30 निश्चित की गई। इस प्रकार इस अधिनियम द्वारा पहली बार भारतीय केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान मंडल परिषदों को ऐसा आकार प्राप्त हुआ उनके नाम और कार्यों के अनुरूप था।

2. केन्द्रीय विधान परिषद में सरकारी बहुमत =

यद्यपि केन्द्रीय विधान परिषद की सदस्य संख्या में वृद्धि कर दी थी तथापि इस बात का ध्यान रखा गया था कि विधान परिषद् में बहुमत सरकारी सदस्यों का ही रहे। केन्द्रीय विधान परिषद के 69 सदस्यों में से 39 सदस्य सभा होते थे। ये सभी सदस्य भारत सरकार द्वारा विधान परिषद के लिये मनोनीत किये जाते थे। केन्द्रीय विधान परिषद् में चार प्रकार के सदस्य होते थे।—

(i) पदेन सदस्य :—
वे सभी व्यक्ति जो गवर्नर जनरल की कार्य कारिणी परिषद (Executive council) के सदस्य होते थे वे पदेन Ex officio सदस्य थे।

(ii) मनोनीत सरकारी सदस्य :— इसके अतिरिक्त कुछ सरकारी मनोनीत सदस्य होते थे जिन्हें भारत मंत्री और गवर्नर जनरल मनोनीत करते थे।

(iii) मनोनीत गैर सरकारी सदस्य :—
ये वे थे जो ~~सरकारी~~ सरकार के किसी पद पर नहीं थे किन्तु फिर भी उन्हें विधान सभा में मनोनीत किया जाता था जैसे जमींदार, मिल मालिक आदि।

Scanned with CamScanner

(iv) निर्वाचित सदस्य :-

जो सदस्य चुने जाते थे उन्हें निर्वाचित सदस्य कहा जाता था। निर्वाचित प्रतिनिधि जनता द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से चुने जाते थे - ये चैम्बर ऑफ कामर्स जिला बोर्ड, नगरपालिकाओं और बड़े-बड़े जमींदारों द्वारा चुने जाते थे। केन्द्रीय विधान परिषद के 60 सदस्यों में से 37 सरकारी 5 नामजद गैर सरकारी और 27 निर्वाचित 27 निर्वाचित सदस्यों में से 5 मुसलमानों द्वारा 6 हिन्दु जमींदारों द्वारा, मुस्लिम जमींदारों द्वारा, बंगाल चैम्बर ऑफ कोमर्स द्वारा और शेष 13 प्रान्तीय विधान परिषदों द्वारा चुने जाते थे। सदस्यों का कार्यकाल तीन वर्ष का था। इस प्रकार केन्द्रीय विधान परिषद् में सरकारी बहुमत रखा गया।

3. प्रान्तीय विधान ~~सभा~~ परिषद में गैर सरकारी बहुमत :-

इस अधिनियम में सर्वाधिक प्रशंसनीय यह थी कि प्रान्तों की विधान परिषदों में गैर-सरकारी सदस्यों के बहुमत की व्यवस्था की गई थी ताकि गैर-सरकारी ~~सरकारी~~ बहुमत का तात्पर्य निर्वाचित बहुमत से नहीं था। सरकारी सदस्य और गैरसरकारी मनोनीत गैर-सरकारी सदस्य दोनों मिलकर निर्वाचित सदस्यों से निश्चित रूप से अधिक हो जाते थे। प्रायः प्रान्तीय सरकारों को प्रान्तीय विधान परिषदों से अपनी इच्छानुसार कानून बनवाने में कठिनाई नहीं होती थी। क्योंकि सरकार द्वारा मनोनीत गैर-सरकारी सदस्य सरकार का पक्ष लेते थे।

Scanned with CamScanner

PAGE :
DATE : / /

4. विधान ~~सरकार~~ परिषदो के अधिकारो मे वृद्धि :—

अधिनियम 1892 के एक्ट के द्वारा विधान परिषदो के कार्यो एव अधिकारो मे वृद्धि की गई थी किन्तु यह पर्याप्त नही थी। इस दृष्टि से नवीन सुधारो 1909 के अन्तर्गत विधान सरकारो को अपनी परिषदो के कार्यो मे वृद्धि करने के लिये नियम बनाने का अधिकार दिया गया।

(a) बजट :— अभी तक सरकार द्वारा प्रस्तुत बजट पर थोडी बहुत मात्रा मे विधानपरिषद वाद विवाद कर सकता था किन्तु इस सुधार द्वारा सदस्यो को बजट पर प्रस्ताव पेश करने की अनुमति मिल गई। विधान परिषद के सदस्य बजट पर वाद-विवाद कर सकते थे। फिर भी कुछ विषय ऐसे थे जिन पर उन्हे वाद-विवाद का भी अधिकार नही था। जैसे सैनिक और राजनीतिक विभाग तथा ब्याज धार्मिक व्यवस्था रेलवे और आयात कर आदि।

अभी तक चर्चा का ही अधिकार दिया गया था किन्तु उन्हे मतदान का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ। फिर भी इन सुधारो का महत्व है जी० एन० सिंह के अनुसार, "इस एक्ट द्वारा मुख्य प्रगति विशेषरूप से आर्थिक विषयो पर वाद-विवाद करसकने मे थी। उदाहरण के लिये केन्द्रीय परिषद मे रिक्त सदस्य द्वारा बजट पेश करने के उपरान्त कोई भी सदस्य नये व्यय के अतिरिक्त अनुदान के विषय मे कोई भी

प्रस्ताव पेश कर सकता था। "(b) सार्वजनिक प्रश्नो पर प्रस्ताव रखने की शक्ति- विधान परिषद के सदस्यो को सार्वजनिक हित के विषय मे प्रस्ताव पेश करने का अधिकार दिया गया था। किन्तु वास्तव मे ये प्रस्ताव केवल सिफारिश के तौर पर ही होते थे। विधान परिषद द्वारा उनके पास किये जाने मे सन्देह बना रहता था और अध्यक्ष स्वयं भी ऐसे प्रस्ताव को रोक सकता था।

(c) प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार:- 1892 के एक्ट द्वारा विधान परिषद के सदस्य कार्यकारिणी से केवल प्रश्न पूछ सकते थे। किन्तु मोर्ले-मिन्टो सुधार द्वारा उन्हें पूरक प्रश्न पूछने का भी अधिकार दिया गया। किन्तु कार्यकारिणी के उन प्रश्नो का उत्तर देने के लिये बाध्य नही थी। और पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार भी केवल उनको था। जिन्होने मूल प्रश्न पूछा हो। विधान परिषदो को अपनी कार्यकारिणी के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित करने का अधिकार नही दिया गया।

(d) कार्यकारिणी परिषद के अधिकारो मे वृद्धि:- विधान परिषद की भान्ति कार्यकारिणी परिषद के अधिकारो मे भी वृद्धि की गई। सपरिषद गवर्नर जनरल को भारत मन्त्री की अनुमति से मद्रास तथा बम्बई की कार्यकारिणी परिषद की सदस्य संख्या दो से चार करने की शक्ति दी गई। (गवर्नर जनरल और उसकी कार्यकारिणी परिषद को पहले यह अधिकार प्राप्त नहीं था। किन्तु ऐसे व्यक्तियो के लिये यह आवश्यक था कि वे सम्राट के अधिन मे बारह वर्ष तक सेवा

कर चुके हो। बंगाल मे कार्यकारिणी परिषद की रचना का अधिकार गवर्नर-जनरल को दिया गया। अन्य प्रान्तो मे भी भारत मन्त्री की स्वीकृति से कार्यकारिणी परिषद की स्थापना की जा सकती थी। किन्तु ऐसी व्यवस्था को ब्रिटिश संसद अस्वीकार भी कर सकती थी।

6 कार्यकारिणी परिषदो मे भारतीयो की नियुक्ति:-

सुधार अधिनियम के अन्तर्गत पहली बार यह प्रावधान किया गया कि कार्यकारिणी परिषद मे किसी भारतीय की नियुक्त की जा सकती है इस आधार पर लॉर्ड सत्येन्द्र प्रसन्न सिन्हा को गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी का प्रथम भारतीय विधि सदस्य नियुक्त किया गया था।

7. निर्वाचन क्षेत्र:-

साम्प्रदायिक और विशेषाधिकार निर्वाचन नवीन सुधारो द्वारा निर्वाचन के सिद्धान्त का यद्यपि विस्तार किया गया था। किन्तु केन्द्र में चुनी भी अप्रत्यक्ष निर्वाचन था। हितो, समुदायों और वर्गों को प्रतिनिधित्व देने के लिये इस सुधार योजना में सामान्य निर्वाचक गण और एक विचित्र प्रकार की निर्वाचन पद्धति अपनाई गई। आर० एन० अग्रवाल के अनुसार "सुधारों के निर्माता इस विषय मे निश्चित थे कि भारत जैसा देश सामान्य निर्वाचन गण और कौमीय प्रतिनिधित्व के लिये

PAGE :
DATE : / /

उपर्युक्त नहीं है। भारत के लिए साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व तथा हितो और वर्गो पर आधारित निर्वाचन निर्वाचन एक व्यावहारिक और उचित पद्धति है। जिसका प्रयोग केन्द्र और प्रान्तो मे किया जा सकता है।"

इस दृष्टि से तीन प्रकार के निर्वाचक गण बनाये गये—

(i) साधारण निर्वाचकगण:—

इस श्रेणी मे प्रान्तीय विधान परिषद के वे गैर-सरकारी सदस्य थे जो केन्द्रीय विधान परिषद के प्रतिनिधि चुनते थे। स्थानीय ~~बिजुआ~~ जिला बोर्ड और म्यूनिसिपल कोर्पोरेशन के गैर-सरकारी सदस्य वे जो प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओ के लिये सदस्यो का निर्वाचन करते थे।

(ii) मुसलमानो के पृथक निर्वाचकगण:—

मुस्लिम लीग के शिष्टमण्डल के प्रयत्न स्वरूप (1909) तथा कोग्रेस की बढती हुई शक्ति के प्रतिकार के रूप मे इन सुधारो के अन्तर्गत साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को मुसलमानो के लिए स्वीकार कर लिया गया और सुधारो मे मुसलमानो के लिये दो व्यवस्थाए की गई। एक साधारण नागरिक होने के नाते उसे दूसरा वोट प्राप्त हुआ। इस प्रकार मुसलमानो को मधुलमतदान (Dual voting) का अधिकार दिया गया। इसके अतिरिक्त विधान परिषदो मे मुसलमानो के लिए स्थान सुरक्षित कर दिये गये और व्यवस्था कर दी गई कि इन स्थानो पर केवल मुस्लिम मतदाताओ द्वारा चुने गये मुस्लिम प्रतिनिधि भर सकते है।

Scanned with CamScanner

PAGE :
DATE : / /

(iv) विशेष निर्वाचक गण :-

मर्लीन एक्ट के अन्तर्गत जमीदारो व्यापारमण्डलो, वाणिज्य संगठनो और केतल मलिको के समुदायो के लिये विशेष निर्वाचक गण बनाये गये।

* का अधिकार था परन्तु पारसी, हिन्दु या ईसाई को मत देने का अधिकार नही था चाहे वह तीन लाख रुपये की आमदनी पर टेक्स देता हो। एक मुस्लिम स्नातक को मतो का अधिकार था जिसे B.A. किये हुए 5 वर्ष हो जाते थे।

(v) सीमित तथा भेदभाव पर आधारित मताधिकार

1909 के कानून द्वारा जो मताधिकार दिया गया वह अत्यन्त सीमित था। वह अनेक प्रकार के भेदभावो पर आधारित था और प्रत्येक प्रान्त मे भिन्न-2 था। उदाहरण के लिये केन्द्रीय विधान परिषद के चुनाव के लिये जमीदारो के चुनाव क्षेत्र मे केवल उन्ही जमीदारो का मत देने का अधिकार था जिनकी आमदनी बहुत अधिक थी। मद्रास मे यह अधिकार उनको दिया गया जिनकी आमदनी 15 हजार रुपये वार्षिक थी। अथवा जो 10 हजार रुपया वार्षिक भूमिकर देते थे। बंगाल मे यह अधिकार उनको दिया गया जिनके पास राय या नवाब की उपाधि थी। मुख्यप्रान्त मे यह अधिकार उनको दिया गया जो ओनरेरी मजिस्ट्रेट थे। इसी प्रकार मुसलमानो मे भी मताधिकार की योग्यता

भिन्न-2 थी। इसना ही नही मुस्लिम और गैर-मुस्लिम व्यक्तियो की मताधिकार योग्यताए भीन्न थी। केन्द्रीय व्यवस्थापिका मे केवल वे ही मतदान कर सकते थे जो सम्पतिशील थे और आयकर देते थे। अथवा अर्थतानिक अफसर थे। प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओ मे 5000 रुपये वार्षिक राजस्व देने वाले हिन्दु को मताधिकार था जबकि मुसलमानो मे उनको मताधिकार था। जिनकी वार्षिक राजस्व मात्र 750 रुपये थे। प्रत्येक मुसलमान को जिसकी आमदनी तीन हजार रुपये वार्षिक थी, मत देने

(v) उम्मीदवारो के लिये अनावश्यक रुप से कठोर भेदभाव पूर्ण योग्यताए:— केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान परिषदो के उम्मीदवारो की सामान्य योग्यता भी अलग थी। बंगाल, बम्बई, मद्रास प्रान्तीय परिषद की सदस्यता प्राप्त करने के लिये नगर पालिका अथवा जिला बोर्ड का सदस्य होना आवश्यक था। किन्तु संयुक्त प्रान्त के लिये ऐसा कोई प्रतिबन्ध नही था। सम्पति योग्यता भी निश्चित की गई थी। इसके अतिरिक्त वे व्यक्ति उम्मीदवार नही हो सकते थे, जो ब्रिटिश प्रजाजन न हो या सरकारी कर्मचारी महिला, 20 वर्ष की उम्र से कम इत्यादि। इसके अतिरिक्त, सरकार राजनीतिक आन्दोलन करने वालो को चुनाव लडने से मना कर सकती थी।

आलोचना → 1909 के सुधार कानून का उद्देश्य कॉग्रेस के उदारवादी पक्ष को सन्तुष्ट करना था। ताकि उन्हे ब्रिटिश सरकार के साथ लिया जा सके और उग्रवादियो और क्रान्तिकारियो

को कठोरतापूर्वक दबाया जा सके। कानून के पारित होते समय ऐसा विश्वास किया जाता था कि भारतीयों को महत्वपूर्ण अधिकार प्रदान किये जा रहे हैं। इस पर गोखले ने कहा था "इन सुधारों ने नौकरशाही के स्वरूप को बिल्कुल बदल दिया है और चुने हुए सदस्यों को कार्यकारिणी परिषद् पर प्रभाव डालने का अवसर दिया है।" लेकिन वास्तव में ये सुधार गोखले को 1910 में पुनः गोखले ने कहा था सुधारों में जो भी अच्छी बातें थी वे सब सरकारी नियमों और उपनियमों द्वारा नष्ट कर दी गई हैं।

1. इसके द्वारा उत्तरदायी शासन की स्थापना नहीं→ भारतीयों द्वारा निरन्तर उत्तरदायी शासन की मांग की जा रही थी, लेकिन 1909 के सुधार में इस को स्वीकार नहीं किया गया लार्ड मार्ले का उद्देश्य भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना करना नहीं था। दिसम्बर 1908 में ~~हाउस ऑफ लार्ड~~ हाउस ऑफ लार्ड्स में भाषण देते हुए उन्होंने कहा था यदि सुधारों के विषय में यह कहा जाये कि इनसे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से भारत में संसदीय सरकार की स्थापना होती है तो मुझे ऐसे कार्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। कानून की इस अपूर्णता के कारण स्वाभाविक रूप से भारतीयों को बहुत अधिक निराशा हुई। इस कानून द्वारा न

PAGE :
DATE : / /

तो भारत मन्त्री और उनकी परिषद् और न ही गवर्नर जनरल तथा उनकी परिषद् की शक्तियों मे ही कोई कमी हुई। भारत की शासन व्यवस्था अभी एक तरह से निरंकुश ही थी। B.N. शर्मा के शब्दो मे "इन परिवर्तनो ने सुधार पूर्व युग की प्रशासन पद्धति की आत्मा मे कोई परिवर्तन नहीं किया। डा० जकारिया के अनुसार " इसने भारतीयो को जो चीज दी वह नितान्त अर्थ शून्य थी।" ~~इसने~~ रावर्टस् ने कहा है कि सुधार भारतीयो के लिये अधूरे भवन के समान थे। डा० सामानन्द अग्रवाल ने इसे दयालील तानाशाही की पराकाष्ठा कहा था। पराकाष्ठा यह इस रूप मे थी। कि भारतीयों को बिना कोई उत्तरदायित्व सौंपे कृपालुता की नीति शिखर तक पहुंचा दी गई थी

2. केन्द्रीय विधान परिषद मे सरकारी सदस्यो बहुमत :-

यद्यपि यह दावा किया गया था कि केन्द्र मे व्यवस्थापिका को उचित आकार प्रदान जा रहा है और उसे वास्तविक शक्तियाँ प्रदान की जा रही है। यह एक भ्रम मात्र ही था। केन्द्रीय परिषद मे सरकारी सदस्यो की स्थिति नितान्त असहाय थी। पुनैया ने ठीक ही कहा- "गैर-सरकारी सदस्य अपनी बात की पुष्टि मे चाहे कितने ही अच्छे तर्क क्यो न दे लेकिन जब विधेयक पर मतदान का समय होता है तो सरकारी पक्ष सामने आकर विधेयक अपने पक्ष मे पास करवा लेता है।

[Constitutional History of India]

Scanned with CamScanner

3) प्रान्तीय या परिषदो मे गैर-सरकारी बहुमत → एक्ट अधिनियम के अनुसार यह व्यवस्था की गई थी कि प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओ मे गैरसरकारी बहुमत हो परन्तु व्यवहारिक मे यह क्रम मात्र था। गैर-सरकारी सदस्य दो प्रकार के थे - मनोनीत और निर्वाचित। मनोनीत सदस्य सदैव सरकारी सरकार के पक्षधर थे और प्रान्तीय परिषदो मे सरकारी सदस्यो तथा मनोनीत गैरसरकारी सदस्यो को मिला देने से बहुमत सरकारी पक्ष का ही बनता था।

इसके अतिरिक्त गैर-सरकारी बहुमत का इसलिये भी महत्व नही था क्योकि गवर्नर को इन सभी विषयो पर विशेषाधिकार एवं निषेधाधिकार की शक्तियो भी प्राप्त थी।

4. विधायी परिषदो के सीमित अधिकार :-

विधायी परिषदे जनता की प्रतिनिधि संस्थाए नहीं थी और साथ ही इनके अधिकार की सीमित थी। वह कार्य कारिणी पर नियन्त्रण नही रख सकती थी। इस विषय मे श्री राम शर्मा का कथन है सुधारो के अन्तर्गत विधान परिषदो के लिये यह दावा किया गया था कि वे जनता का केवल कानून निर्माण मे ही नही अपितु दिन-प्रतिदिन के वास्तविक प्रशासन मे वास्तविक का प्रभावशाली ढंग से सहयोग प्राप्त करेगी। किन्तु सुधारो के स्वभावगत दोषो ने यह सिद्ध कर दिया कि उन्होने भारतीयो का राजनैतिक मांगो का न तो कोई उत्तर दिया और नही वे दे सकते थे

PAGE:
DATE: / /

विधान परिषदो के सदस्य बजट पर बहस कर सकते थे। लेकिन सरकार के एक रुपये पर भी उनका प्रत्यक्ष नियन्त्रण नही था। सदस्यो को मुख्य प्रश्न पूछने का अधिकार था। लेकिन कार्यकारिणी के सदस्यो के लिये उन प्रश्नो का उत्तर देना आवश्यक नही था। सदस्यो को सार्वजनिक मामलो पर प्रस्ताव का अधिकार था। लेकिन इन प्रस्तावो मानना या न मानना सरकार की इच्छा पर निर्भर था।

5. साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली:→ 1909 के अधिनियम मे वे बीज बो दिये गये थे जिसके कारण साम्प्रदायिकता का बीज सम्पूर्ण भारत मे फैलता गया और इसका अन्त भारत विभाजन के रूप मे हुआ। इन चुनावो मे मुसलमानो को विधान परिषदो मे अलग प्रतिनिधित्व दिया गया। मुस्लिम मतदान केवल मुस्लिम उम्मीदवार को ही वोट दे सकते थे। इसके अलगाव की भावना बढ गई क्योकि चुनाव मे सफल होने के लिये उन्हे हिन्दुओ के वोटो की आवश्यकता नही पडती थी। इस तरह से जो उम्मीदवार चुने जाते थे वे राष्ट्रीय विचारो के कदापि नही हो सकते थे। उनसे यह आशा की जाती थी कि वे सब तरह से अपने सम्प्रदायो के हितो की ही रक्षा करेंगे। इस सुधार ने केवल मुसलमानो के लिये ही नही अपितु अन्य जातियो के लिये भी सम्प्रदाय व वर्गो के आधार पर निर्वाचन क्षेत्र बनाये। इस विषय मे जवाहरलाल नेहरू का कथन था

मुसलमानो के चारो ओर एक राजनैतिक दीवार खडी कर दी गई है और उन्हे शेष भारत से अलग कर दिया गया। उससे राजनैतिक और सामाजिक जीवन के ढांचे पर इस प्रकार असर पड़ा मानो उसमे घुन लग गया हो और अन्ततः भारत का विभाजन हुआ"। आर० एन० अग्रवाल का कहना है कि साम्प्रदायिक प्रतिनिधि के आधार पर भारत को प्रथम बार विभाजित किया गया जिसके कारण एकता की सारी आशाए अप्रसन्नाव काली सिद्ध हुई।

6. अप्रत्यक्ष निर्वाचन:—

सुधारो के अन्तर्गत केन्द्रीय विधान परिषदो का चुनाव प्रान्तीय परिषद द्वारा होता था। और प्रान्तीय परिषदो का चुनाव लिजा परिषदो और म्युनिसिपल कमेटी द्वारा होता था। इस प्रकार दोनो क्षेत्रो मे विधान परिषदो का चुनाव अप्रत्यक्ष रखा गया था। इसके पीछे सुधारो के निर्माताओ का यह उद्देश्य था कि प्रत्यक्ष चुनाव रखने पर मतदाता और प्रतिनिधि का सम्पर्क अधिक बढेगा। और इससे वे उत्तरदायी शासन की तीव्रता से मांग करेगे। इसीलिये अप्रत्यक्ष निर्वाचन रखे गये। गुरुमुख निहाल सिंह के शब्दो मे इस योजना के अन्तर्गत स्थापित निर्वाचन पद्धति निराशापूर्ण ढंग से अपर्याप्त थी। इस भार प्रकार अप्रत्यक्ष निर्वाचन

PAGE :
DATE : / /

रखकर जनता को कोई राजनैतिक शिक्षा नहीं दी गई और न ही मतदाता इस योग्य थे कि वे अपने प्रतिनिधियों से प्रश्न पूछ सके

7. सीमित मताधिकार एवं अनुचित भेदभाव →

सुधारों ने चुनावों की प्रणाली को आरंभ किया किन्तु मतदाताओं की संख्या अत्यधिक सीमित थी। इस कारण निर्वाचित व्यक्तियों को किसी भी प्रकार से जनता का प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता था।

इसके अतिरिक्त अधिनियम द्वारा विभिन्न सम्प्रदायों के मतदाताओं में अनुचित भेदभाव किया गया था। मुसलमानों में मध्यमवर्गीय जमींदारों, व्यापारियों और स्नातकों को मताधिकार प्रदान किया गया किन्तु इसी श्रेणी के गैर मुसलमानों को मताधिकार से वंचित रखा गया बहुसंख्यक सम्प्रदाय हिन्दुओं के साथ अन्याय किया गया हिन्दू बहुमत वाले प्रान्तों में अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिये मुसलमानों में भारी प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया था, लेकिन मुस्लिम बहुमत वाले प्रान्तों— पंजाब, पूर्वी बंगाल और आसाम में हिन्दुओं को इस प्रकार का प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं था।

8. संयुक्त कार्य शक्ति का अभाव → 1909 का अधिनियम स्पष्ट रूप से संसदीय शासन का निषेध करता है और व्यवहार में भी यही हुआ। विधान परिषदों में जो प्रतिनिधित्व निर्वाचित होकर आते थे वे वर्ग, स्वार्थ और जातीयता का प्रतिनिधित्व करते थे। इस कारण वे

संगठित होकर कार्य नहीं कर सकते थे। साथ ही संसदीय शासन मे कार्यकारिणी का संयुक्त उत्तरदायित्व होता है अर्थात् मन्त्रिमण्डल इकाई के रूप मे कार्य करता है। 1909 के एक्ट मे मन्त्रिमण्डल का नाम भी नहीं था इस कारण मन्त्रिमण्डल संयुक्त उत्तरदायित्व का प्रश्न ही नही उठता।

इसप्रकार 1909 के सुधार अधिनियम मे अनेक दोष थे। डि० जकारिया ने अपनी पुस्तक Renascent India मे लिखा है। इसने जहाँ लोकतन्त्र के सिद्धान्त को स्वीकार किया वहाँ ~~लोकतन्त्र~~ लोकतन्त्र विरोधी सम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को जोड दिया। यद्यपि सरकारी बहुमत बना दिया गया किन्तु निर्वाचित सदस्यो का अल्पमत ही रहा। व्यवस्थापिका सभाओ मे सदस्यो की संख्या बढा दी गई किन्तु यह स्पष्ट शब्दो मे ~~कहा~~ कह दिया गया कि इनका संसदीय प्रणाली से कोई सम्बंध नही है।

आलोचको:- का कथन है कि इन

इन सुधारो ने जनता को सार नही दिया सिर्फ परछाई दी। उन्हें शक्ति नही केवल प्रभाव दिया गया। और जार्ज वॉशिंगटन के शब्दो मे प्रभाव का अर्थ शासन नही है। आर०सी० मजुमदार के अनुसार — "1909 के सुधार कोरी चादंनी के समान है" इन सुधारो से निर्वाचित सदस्यो को लेशमात्र भी अधिकार नहीं सौंपे गये जिससे वे सरकारी कार्यवाहियो को प्रभावित कर सके। वास्तविक सत्ता तो सरकारी सदस्यो के हाथो मे थी और इससे नौकरशाही ढांचे मे कोई संशोधन नही हुआ।

Scanned with CamScanner

PAGE :
DATE : / /

इनसे किसी नवीन प्रगतिशील नीति का पादुर्भाव नहीं हुआ। इसने भारतीयो को हाथो मे कोई जिम्मेदारी नही सौपी। रेम्जे मैकडोनल्ड के अनुसार, मार्ले-मिण्टो सुधार जनतन्त्रवाद के व नौकरशाही के मध्य एक अधुरा और समझौता था।

महत्व

यद्यपि 1909 के सुधार अधिनियमो मे अनेक त्रुटियां थी फिर भी यह एक्ट एकदम महत्वहीन नही था। मि० प्रधान के अनुसार 1909 के एक्ट मे भारतीयो को स्वशासन की प्रणाली की शिक्षा देने की व्यवस्था की गई थी ताकि वे भविष्य मे स्वशासित संस्थाओ का संचालन कर सके।" 1917 की रिपोर्ट में इन सुधारो के विषय मे यह कहा गया था कि इन सुधारो द्वारा एक निश्चित कदम उठाया गया और निकट भविष्य मे उत्तरदायी शासन की स्थापना अवश्यंभावी रूप से होने वाली थी।

1909 के सुधारो मे निम्नलिखित महत्वपूर्ण बाते थी →

1) प्रथमबार भारतीयो को कार्यकारी परिषद मे लिया गया था। प्रान्तो मे गैरसरकारी सदस्यो का बहुमत रखा गया। इसके द्वारा मताधिकार का विस्तार किया गया और विधान परिषदो के आकार कार्य और अधिकार मे वृद्धि की गई। वाद विवाद के अतिरिक्त और स्वयं भी प्रस्ताव पारित करके शासन को संभाल सकते थे भले ही अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति अपनाई गई हो किन्तु इससे भारतीयो को निर्वाचन के विषय में शिक्षा मिली और उन्हे ~~निर्वाचन के विषय~~ भविष्य मे प्रगति करने का अवसर मिलेगा।

Scanned with CamScanner